रमेश कुमार यादव
हिन्दी-विभाग
डी. के. कालेज डुमराँव
बक्सर (बिहार)

काव्य लक्षण के स्वरुप :-

कवि के द्वारा जो कार्य संपन्न हो उसे काव्य कहते हैं- 'कवेरिदं कार्यं भावो वा'। अत: काव्य की व्याख्या के लिए 'कवि' शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक हो जाता है। 'कु' धातु में अच् प्रत्यय (इ) जोड़कर 'कवि' शब्द की व्युत्पति बतलायी गयी है और 'कु' का अर्थ है व्याप्ति' आकाश अर्थात् सर्व-ज्ञाता। फलत: कवि सर्वज्ञ है, द्रष्टा है। श्रुति कहती है, 'कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू'। परिभू: अर्थात जो अपनी अनुभूति के क्षेत्र में सब कुछ समेट ले और 'स्वयंभू' जो अपनी अनुभूति के लिए किसी का भी ऋणी न हो, अर्थात काव्य उसी मनीषी की सृष्टि है, जो स्वयं संपूर्ण और सर्वज्ञ हो।

कवि के लिए 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' और 'वर्णननिपुणता' अनिवार्य धर्म है। परन्तु यह वर्णन निपुणता असाधारण होनी चाहिए। काव्यं लोकोन्तरवर्णना निपुणं कवि कर्म' (काव्यप्रकाश) अग्नि पुराण में कवि-कर्म को 'काव्य संसार' कहा गया है और कवि को इस संसार का स्रष्य या प्रजापति (अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति)

काव्य का लक्षण क्या है, इस विषय को विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न रूपों में उपस्थित किया है। वास्तव में इन आचार्यों के सामने या तो विशिष्ट काव्य को लिया थी, जैसे (भरतमुनि का काव्य-लक्षण नाटक पर आधारित है)

भारतीय काव्य-चिंतकों में पहले उल्लेखनीय आचार्य भरतमुनि हैं। उन्होंने अपने 'नाट्यशास्त्र' में काव्य के स्वरुप के विषय में भी विचार किया है। वे नाट्य-शास्त्र के आचार्य थे, अत: नाटक में प्राप्त काव्य की

विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा उसी से उनकी काव्य-विषयक मान्यताओं की अवधारणा हो सकती है। उनकी मान्यता है कि काव्य रसमय होना चाहिए तथा काव्य की पदावली मृदु, ललित तथा सर्व-जन सुखबोधक होनी चाहिए –

"मृदुललित पदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनम्,
जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्य योज्यम्।
बहुरसकृतमार्गं सन्धिसन्धान युक्तम्,
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्।"

प्रसिद्ध आलंकारिक आचार्य भामह के अनुसार, 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' अर्थात शब्द और अर्थ का सहभाव ही काव्य है। यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है। शास्त्र इतिहास आदि सब कुछ इसमें अंतर्भुक्त हो जाते हैं। जाहिर है, इस परिभाषा से काव्य का कुछ भी स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

इसके बाद के आचार्यों ने बाह्य स्वरूप-निरूपक लक्षणों का खंडन कर प्रायः काव्य की आत्मा की तलाश करने का प्रयास किया है। आचार्य दण्डी कहते हैं- "शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली" अर्थात इष्ट अर्थ को प्रकट करने वाली पदावली तो शरीर मात्र है। यही भाव आनंदवर्धन का भी है। उनके अनुसार काव्य तो शब्दार्थ के शरीर वाला है। उसकी आत्मा या वास्तविक तत्व कुछ और ही है- "शब्दार्थ शरीर तावत्काव्यम्"।

इन धारणाओं के फलस्वरूप संस्कृत के आचार्यों द्वारा काव्य की आत्मा तलाशने का जो प्रयास हुआ उसी के परिणामस्वरूप रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य और ध्वनि को काव्य की आत्मा कहने की परंपरा विकसित हुई।

आचार्य भामह ने अलंकार के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उसे व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। उन्होंने 'रस' तक को भी रसवत अलंकार के रूप में सम्मिलित कर लिया है। आचार्य दण्डी अलंकार को काव्य की शोभा करने वाला धर्म मानते हैं -

"काव्यशोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।"

आचार्य वामन रीति को काव्य की आत्मा मानते है- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते है — काव्यस्यात्मा ध्वनि:। आचार्य कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति काव्य की आत्मा है - 'वक्रोक्ति: काव्यजीवितम्"। और इसी क्रम में आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहकर रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। इसी अर्थ का और अधिक स्पष्ट संकेत हमें पण्डितराज जगन्नाथ की परिभाषा में मिलता है जो इस प्रकार है—

"रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"

अपेक्षाकृत उपयुक्त होते हुए भी उक्त परिभाषा में दो त्रुटियां रह जाती हैं। पहली त्रुटि तो यह है कि काव्य में सदा शब्द में ही अर्थ की रमणीयता नहीं होती, पूरे वाक्य में रमणीयता प्रतिपादित होती है। अत: रमणीय अर्थ देने वाला 'वाक्य' काव्य होना चाहिए, शब्द नहीं। दूसरी बात यह है कि यहां पर संकेत मात्र अर्थ की रमणीयता का हुआ है जबकि काव्य में शब्द की रमणीयता का भी कम महत्व नहीं।

हिन्दी साहित्य में काव्यशास्त्रीय चिंतन की परंपरा रीतिकाल से प्राप्त होती है पर आधुनिककाल

के आरंभ होने तक हिन्दी में उल्लेखनीय कोई बड़ा आचार्य नहीं हुआ। रीति काल में काव्य के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डाला गया है, परंतु उनमें मौलिकता के दर्शन प्रायः नहीं होते। इस काल में अनेक आचार्य हुए पर वे सभी मूलतः कवि थे और जो कुछ उन्होंने काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में योगदान किया वह सब संस्कृत-साहित्य से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त था। रीतिकाल के प्रारम्भिक आचार्य चिंतामणि का काव्य-लक्षण इस प्रकार है-

"सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ तासौं कवित, विबुध कहत सब कोइ॥"

आचार्य केशवदास का कथन है-

"जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त॥"

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- 'कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनंदमयी प्रभाव डालती है।" मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं। वही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।" अंतः करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।"

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है, "काव्य तो प्रकृत मानव-अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौंदर्यमय चित्रण है, जो मानव मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौंदर्य-संवेदन उत्पन्न करता है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल काव्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।"

आचार्य शुक्ल की इस परिभाषा में प्रमुख बात है - रस दशा या हृदय की मुक्तावस्था का आत्मा की मुक्तावस्था या ज्ञान की दशा के समकक्ष रखना। इससे रसानुभूति की धारणा की उच्चता प्रमाणित होती है। वे इसे अलौकिक नहीं मानते। उन्होंने लोक हृदय में लीन होने की दशा को रस दशा कहा है। इस प्रकार आचार्य शुक्ल की यह परिभाषा अन्य परिभाषाओं की अपेक्षा ज्यादा प्रामाणिक और सार्थक है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि यद्यपि काव्य की कोई सर्वांगपूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती पर आचार्यों द्वारा सुझाये गये काव्य-लक्षणों के आधार पर हम काव्य के स्वरूप की एक निश्चित अवधारणा कर सकते हैं।

-रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट - प्रोफेसर
हिन्दी - विभाग
डी. के. कालेज, डुमराँव
बक्सर - (बिहार)